

**THE TIMES OF INDIA***Date: 02-10-26*

Melting Pot Japan

Ageing population has forced famously insular country to hire foreigners. It's an opportunity for Indians

TOI Editorials

Japan has more people aged over 95 than babies born within the past 12 months. It uses far more adult diapers than baby diapers. Its population has been declining since 2009, and it's feeling short of hands for a variety of jobs, ranging from construction to agriculture. In fact, its offices have a unique class of older employees, called madogiwazoku – window gazers – who are retained not for their productivity but psychological safety. So, it's not surprising that, despite its famously anti-immigration mood, Japan is hiring foreign workers in large numbers.

Latest data puts the number of foreigners with specified skilled worker status in Japan at 4.4L, a record. Several lakh more are likely to be accepted over the next two years. But even this can't bridge the labour gap that an ageing population has opened up. A survey last year found that 68% of Japanese firms had hired foreigners because they couldn't find native Japanese to do the job. Shortages are acute in healthcare and manufacturing. Even IT is likely to need 8L hands by 2030.

These are roles that Indian workers could fill, yet they form a small minority of Japan's foreign workforce. Vietnamese, Indonesians and Myanmar are present in strength, even Nepalese, although Japanese language is a hurdle for all. That's not a missed opportunity, though. The next 45 years, when Japan's foreigner population could touch 11%, up from 2% in 2020, are a window Indian blue- and white-collar workers can aim for. Given the warm ties between India and Japan, GOI can play enabler. Japan has a plan to use millions of AI-powered robots to tide over its looming demographic crisis, but it's also a conservative society where only 8.4% of people – per OECD – use AI at work, as against 50% of Americans. Japan probably will want the human touch, which means more immigrants.

*Date: 03-10-26*

Rescue act

Preventing ecological degradation is the way to protect wildlife

Editorial

The first tiger to be reintroduced in West Bengal represents a triumph of bureaucracy, not ecology. After the National Tiger Conservation Authority found no tigers in the Buxa, Dampa, and Palamau reserves by 2018, it mooted a programme with the Bengal Forest Department and the Wildlife Institute of India that has culminated with a royal Bengal tigress caught in Bihar to be released in Buxa. She is the first of seven to be relocated over two years. Buxa is dotted with settlements and surrounded by revenue villages and tea estates. The region already hosts an elephant population routinely threatened by a railway line, with the railways also planning to restore a route to Jainti. Commercial traffic on the Bhutan-West Bengal road through Buxa is another problem. Estates are also notorious for fragmenting the landscape, including migration corridors. The area's forests have turned into dense woodland with a closed canopy, stifling the growth of grasses and causing herbivore populations to dwindle. The density of chitals, tigers' prey, is dismal; goats, macaques and cattle have become more common in tiger diets in place of their preferred ungulates. Since 2018, the collaboration has reintroduced chitals; artificially opened some canopies to help revive grasslands; and relocated villagers from the reserve's core to mitigate human-wildlife conflicts. This last measure is, however, also a window into the cynical character of the reintroduction programme.

From 1973, India followed preventive conservation practices that protected source populations and their habitats, and maintained prey bases and corridors. Buxa, however, belongs to a more recent, more reactive tradition that also includes Sariska and Panna, where authorities intervened only after tiger populations crashed. A reintroduction programme showcases technical capabilities but is also more expensive and heavy-handed, and reflects Project Tiger's problematic belief that the core habitat needs to be inviolate — one the state machinery has used to override the rights of Adivasis and forest-dwelling communities and disrupt incomes from ecotourism. The reserve is also part of an international wildlife corridor contiguous with Phibsoo in Bhutan, to the north, and Manas in Assam to the east. If these forests offer higher prey density or fewer disturbances, the tigers may disperse. Success at Buxa means introduced tigers establish territories and produce cubs, which survive and breed, with natural immigration maintaining genetic diversity. But success should also be an advance, rather than a rescue, and entails monitoring ecological deterioration such that the state does not wait for tigers to vanish to act and involving communities in and around Buxa in decisions about preventing conflicts and protecting livelihoods.



दैनिक जागरण

Date: 02-10-26

लोकतंत्र के लिए शुभ नहीं संस्थाओं पर हमल

राहुल वर्मा, (लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं सेंटर फार पालिसी रिसर्च में फेलो हैं)

हाल में विपक्ष की राजनीति के नए तेवर देखने को मिले हैं। उसके तेवरों की तपिश मुख्य रूप से चुनाव आयोग और उसके द्वारा कराई जा रही मतदाता सूचियों के पुनरीक्षण यानी एसआइआर की प्रक्रिया को झेलनी पड़ रही है। बीते दिनों मुख्य चुनाव आयुक्त और दोनों अन्य आयुक्तों के बीच एक अंग्रेजी दैनिक में छपी खबर के बाद से चुनाव आयोग को लेकर विपक्ष और मुख्यतः कांग्रेस नए सिरे से आक्रामक हुई है। इसी सिलसिले में कांग्रेस ने 30 सितंबर को आइएनडीआइए की बैठक बुलाई और मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार के विरुद्ध अभियान चलाने का एलान भी किया। काकरोच जनता पार्टी यानी सीजेपी ने भी ज्ञानेश कुमार के इस्तीफे की मांग को लेकर दो अक्टूबर को मुंबई में विरोध-प्रदर्शन का आह्वान किया। इस घटनाक्रम को देखते हुए यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि चुनाव आयोग और एसआइआर का मुद्दा क्या विपक्षी दलों के लिए संजीवनी साबित हो सकता है और उनमें एकता का भाव बढ़ाएगा?

जहां तक एसआइआर की बात है तो भले ही इसे लेकर कुछ विवाद उठ खड़े हुए हों, लेकिन यह एक नितांत आवश्यक प्रक्रिया है। अगर चुनाव आयोग को यह मूलभूत दायित्व मिला हुआ है कि वह देश में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव संपादित कराए तो इस संवैधानिक संस्था की यह भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण है कि चुनाव प्रक्रिया में वैध मतदाता ही शामिल हों। वैध मतदाताओं के बिना स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एसआइआर जैसी प्रक्रिया और महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत जैसे विशाल एवं विविधता से परिपूर्ण लोकतंत्र में मतदाता सूचियों में विसंगतियां सामान्य बात है। ऐसा इसलिए, क्योंकि कुछ मतदाताओं के निधन या स्थान परिवर्तन अथवा एक से अधिक स्थानों पर मतदाता के रूप में मौजूदगी से विसंगतियां बढ़ती हैं, जिन्हें समय-समय पर दूर किया जाना आवश्यक है। यह शुद्धीकरण भी कोई आसान कवायद नहीं। चूंकि यह प्रक्रिया इतने बड़े पैमाने पर हो रही है, इसलिए उसमें कुछ त्रुटियों का रह जाना भी बहुत स्वाभाविक है। चुनाव आयोग को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि इस प्रक्रिया में सामने आने वाली गड़बड़ियों को तत्परता के साथ सुधारा जाए, ताकि उस पर अंगुलियां न उठ सकें।

एसआइआर की प्रक्रिया में कतिपय कमियों का मुद्दा उठाकर ही विपक्ष इसे लेकर अपना नैरेटिव बनाने में जुटा है। एसआइआर की प्रक्रिया बिहार विधानसभा चुनाव के साथ शुरू हुई, लेकिन विपक्षी दल विशेषकर कांग्रेस महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव परिणाम के बाद से ही वोट-चोरी को मुद्दा बनाने में जुटी है। उसके बाद से कई चुनाव भी हो चुके हैं, लेकिन लगता नहीं कि इस मुद्दे का कोई विशेष असर हुआ। अब तो राहुल गांधी 2024 के

लोकसभा चुनाव को भी वोट चोरी के साथ जोड़ रहे हैं, लेकिन यह भी एक बड़ा सवाल है कि क्या उनका नैरेटिव जनता के बीच कोई असर छोड़ पाएगा। यह कहना भी गलत नहीं होगा कि इससे एक संस्था के रूप में चुनाव आयोग कमजोर दिखेगा और मुख्य चुनाव आयुक्त के कद पर भी असर पड़ेगा।

इसमें संदेह नहीं कि पिछले लोकसभा चुनाव में मुख्य विपक्षी दल कांग्रेस को अपेक्षाकृत कहीं अधिक सफलता मिली। पार्टी तीन अंकों से ठीक पहले ठिठक गई, लेकिन लगातार दो लोकसभा चुनावों में हुए मानमर्दन के बाद यह जीत कुछ सम्मानजनक जरूर रही। सत्ता में आई भाजपा पहले की तरह उतनी ताकतवर नहीं रही। वैसे भी जब कोई सरकार लगातार तीसरे कार्यकाल में आ जाए तो उसके साथ कुछ मुश्किलें शुरू हो ही जाती हैं। मौजूदा घरेलू एवं वैश्विक चुनौतियों ने भी सरकार की राह कुछ कठिन कर दी है। खास तौर से आर्थिक मोर्चे पर आ रही मुश्किलें सरकार की कठिनाइयां और बढ़ा सकती हैं, क्योंकि जब लोगों को रोजगार की कमी से लेकर महंगाई की मार झेलनी पड़ेगी तो उसका असर सरकार की लोकप्रियता पर भी पड़ेगा। पेपर लीक जैसे मुद्दों ने भी उसकी मुश्किलें बढ़ाई और इसके चलते सीजेपी के प्रदर्शन का परिणाम शिक्षा मंत्री के इस्तीफे के रूप में सामने आया। इससे पहले मोदी सरकार में मंत्रियों के इस तरह इस्तीफे नहीं हुए। यह इसका संकेत है कि सरकार कहीं न कहीं कुछ रक्षात्मक अवश्य हुई है।

विपक्ष की ताकत कुछ बढ़ी है तो कुछ मोर्चों पर वह कमजोर भी हुआ है। एक समय विपक्षी दलों में बेहद मुखर मानी जाने वाली और विपक्षी नेतृत्व के लिए रह-रहकर दावा करने वाली तृणमूल कांग्रेस न केवल बंगाल की सत्ता से बाहर हो गई, बल्कि उसके कई सांसद भी उससे छिटक गए। पार्टी वजूद बचाने की चुनौती से दो-चार है। इसी तरह दक्षिण में कांग्रेस की लंबे समय से ढाल बनी रही द्रमुक भी पस्त पड़ गई है। परिसीमन के मुद्दे पर बेहद आक्रामक रहने वाली द्रमुक न केवल स्वयं को राजनीतिक रूप से हाशिए पर महसूस कर रही है, बल्कि कांग्रेस के साथ उसका तालमेल भी टूट चुका है। केरलम की सत्ता से बाहर होने के बाद अब वाम दल पूरी तरह सत्ताविहीन हो चुके हैं। यह सही है कि वाम दल कभी एक बड़ी राजनीतिक शक्ति नहीं रहे, लेकिन समय-समय पर आंदोलनों को गति देने और विमर्श को आकार देने में उनकी हमेशा एक अहम भूमिका रही, जो अब कमजोर होती दिख रही है। आम आदमी पार्टी को लेकर निश्चित तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि वह आइएनडीआइए का हिस्सा है भी या नहीं। वैसे भी पंजाब चुनाव के साथ कांग्रेस के साथ उसकी तल्लियां बढ़नी तय हैं। राज्य स्तर के नेताओं के बीच टकराव से इसके संकेत मिलने भी शुरू हो गए हैं।

कुल मिलाकर भारतीय राजनीतिक परिदृश्य इस समय एक नाजुक स्थिति में है। यह और नाजुक न बने, उससे बचने के लिए आवश्यक होगा कि चुनाव आयोग जैसी संस्थाओं की आड़ में राजनीति न की जाए। आयोग का भी यह दायित्व है कि वह राजनीतिक दलों को इसके लिए कोई अवसर न दे। यदि उसके नाम पर राजनीतिक तल्लिही इसी तरह जारी रही तो यह लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नहीं होगा।

Date: 03-10-26

गिरफ्तारी के आधार जानना मौखिक अधिकार

आर के विज, (लेखक छत्तीसगढ़ के पुलिस महानिदेशक रहे हैं)

समाज में गिरफ्तारी को एक कलंक की तरह देखा जाता है। गिरफ्तारी का असर व्यक्ति की सेहत और दिमाग पर भी पड़ सकता है। संविधान हमें गरिमा से जीने का अधिकार देता है और उसमें कोई भी दखल कानून द्वारा तय की गई प्रक्रिया का पालन किए बिना नहीं दिया जा सकता। संविधान के अनुच्छेद 22(1) में यह प्रविधान है कि किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने पर उसे जितनी जल्दी हो सके, गिरफ्तारी के आधारों के बारे में बताया जाए। हाल में सुप्रीम कोर्ट ने इस प्रविधान का उल्लंघन करने पर कड़ा रुख अपनाया है। अनुच्छेद 22(2) में यह भी प्रविधान है कि किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने और अभिरक्षा में लेने के 24 घंटे के अंदर उसे नजदीकी मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाए और बिना मजिस्ट्रेट की अनुमति के उसे 24 घंटे से अधिक की अवधि तक अभिरक्षा में न रखा जाए। गिरफ्तारी के आधार के बारे में बताने का यही प्रविधान दंड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) की धारा 50 (भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 47) में और 24 घंटे के अंदर मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रविधान सीआरपीसी की धारा 57 (भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 58) में किया गया है, परंतु यह सूचना किस प्रकार अर्थात् मौखिक या लिखित स्वरूप में दी जाए, इसका स्पष्ट प्रविधान नहीं किया गया है।

आरोपित को सूचना देने का तरीका मौखिक हो या लिखित, इस संबंध में सुप्रीम कोर्ट ने संविधान और कानून के प्रविधानों की व्याख्या की है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि आरोपित को गिरफ्तारी के आधारों की सूचना देने का उद्देश्य उसे अपने बचाव की तैयारी करने का पर्याप्त मौका देना है, ताकि वह पुलिस रिमांड या न्यायिक अभिरक्षा का विरोध कर सके और जमानत की मांग कर सके। यह प्रविधान केवल प्रक्रियात्मक औपचारिकता नहीं है, बल्कि संविधान में प्रदत्त अधिकारों की समुचित रक्षा करने के लिए है। कोर्ट ने कहा है कि दो कारणों से लिखित में सूचना देना आवश्यक है। प्रथम, मौखिक सूचना देने से तथ्यात्मक जानकारी के आदान-प्रदान में विवाद उत्पन्न हो सकता है। द्वितीय, लिखित में जानकारी देने से आरोपित अपना बचाव पक्ष ठीक से कर सकता है। इसीलिए संवैधानिक प्रविधानों का सही मकसद तभी पूरा होगा, जब गिरफ्तारी के आधार लिखित में उपलब्ध कराए जाएं। ऐसे ही निर्देश हुए सुप्रीम कोर्ट ने 'प्रबीर पुरकायस्थ' (2024) प्रकरण में गैर-कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम की व्याख्या करते हुए दिए और यह स्पष्ट किया कि यदि ऐसा नहीं किया जाता, तो गिरफ्तारी को गैर-कानूनी करार दिया जाएगा और आरोपित को बिना शर्त रिहा कर दिया जाएगा। 'विहान कुमार' (2025) प्रकरण में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि संविधान, विशेष अधिनियम हो या भारतीय न्याय संहिता के अंतर्गत घटित अपराध, इनमें भेद नहीं करता। अर्थात् सभी प्रकार के अपराधों में आरोपित को जितनी जल्दी हो सके, गिरफ्तारी के आधारों के बारे में लिखित में सूचित किया जाना जरूरी है।

‘मिहिर राजेश शाह’ (2025) प्रकरण में सुप्रीम कोर्ट ने उपरोक्त व्याख्या को और मजबूत करते हुए चार बिंदुओं पर स्पष्ट निर्देश दिए। प्रथम, कानून कोई भी हो, गिरफ्तारी के आधार की सूचना समस्त अपराधों में आरोपित को देना अनिवार्य है। दूसरा, गिरफ्तारी के आधार लिखित में देना जरूरी है और वे गिरफ्तार व्यक्ति की भाषा में दिए जाएं। तीसरा, गिरफ्तारी के आधार की सूचना यथासंभव गिरफ्तारी के बाद जल्द-से-जल्द दिए जाएं और जहां शीघ्र लिखित में देना संभव न हो, वहां मौखिक रूप से दिए जाएं, परंतु आरोपित को मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करने के दो घंटे पहले आवश्यक रूप से लिखित में दिए जाएं। चौथा, यदि उपरोक्त निर्देशों का पालन नहीं किया जाता है अर्थात् आरोपित को मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करने से दो घंटे पहले तक गिरफ्तारी के आधारों से सूचित नहीं किया जाता तो गिरफ्तारी अवैध घोषित की जाएगी और आरोपित को रिहा कर दिया जाएगा। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी स्पष्ट किया कि जब प्रकरण दस्तावेजी साक्ष्य पर आधारित हो या गिरफ्तारी से पहले उसे थाने में उपस्थित होने का नोटिस दिया गया हो, तो उसे गिरफ्तार करने से पहले या गिरफ्तार करते समय लिखित में गिरफ्तारी के आधारों से आवश्यक रूप से सूचित किया जाए। यदि आरोपित को रिहा करने के बाद गिरफ्तार करने की पुनः आवश्यकता हो, तो पुलिस मजिस्ट्रेट को उसकी गिरफ्तारी के कारणों और आवश्यकता से अवगत कराएगी, पूर्व में गिरफ्तारी के आधार क्यों नहीं दिए गए, उसका भी कारण बताएगी और गिरफ्तारी तथा अभिरक्षा की मांग करेगी, जिस पर संबंधित मजिस्ट्रेट यथासंभव सात दिन के अंदर इसका निपटारा करेंगे।

उपरोक्त निर्देशों के बावजूद जब सुप्रीम कोर्ट ने हाल में ‘जसकरण जीत सिंह देओल’ (2026) प्रकरण में पाया कि आरोपित को गिरफ्तारी के आधार के बारे में लिखित में सूचित नहीं किया गया था, तो उसने सख्ती करते हुए कहा कि इस मामले में लापरवाह पुलिस अधिकारी के विरुद्ध विभागीय जांच की जाए। कोर्ट ने यह भी कहा कि आपराधिक प्रकरण में अग्रिम कार्यवाही किसी दूसरे विवेचक को हस्तांतरित करनी होगी। चूंकि गिरफ्तारी के आधारों की सूचना न देना मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है, इसलिए हाई कोर्ट आरोपित को उचित मुआवजा भी देगा।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पुलिस अधिकारियों को अपनी संवैधानिक जिम्मेदारियों का निर्वहन और कानून का पालन ईमानदारी से करना होगा। बिना किसी चूक के गिरफ्तारी के आधारों की लिखित में सूचना तय समय-सीमा में आरोपित को देनी होगी। सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों का पालन सुनिश्चित करने के लिए वरिष्ठ अधिकारियों को विशेष नजर रखनी होगी। पुलिस अधिकारियों को इस विषय पर पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित करना होगा। अब चूंकि गिरफ्तारी के आधारों का लिखित में देने का सिद्धांत स्थापित हो चुका है, ऐसे में केंद्र सरकार चाहे तो भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता और विशेष अधिनियमों में तदनुसार संशोधन भी कर सकती है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 03-10-26

यूपीआई चलाने का खर्च जुटाने का बेहतर तरीका

आर कविता राव, (लेखिका राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान की निदेशक हैं)



भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम ने देश की प्रमुख डिजिटल भुगतान व्यवस्था यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (यूपीआई) में बदलाव की घोषणा की है। 15 अक्टूबर से कुछ चुनिंदा लेनदेन पर मर्चेन्ट डिस्काउंट रेट (एमडीआर) लागू किया जाएगा। उम्मीद है कि इस शुल्क का बोझ दुकानदार और व्यापारी उठाएंगे और इसे ग्राहकों से नहीं वसूला जाएगा। हालांकि, इस प्रस्ताव को लेकर व्यापारियों में विरोध है।

यूपीआई में एमडीआर लागू करने के प्रस्ताव ने एक महत्वपूर्ण सवाल खड़ा किया है कि हमें यूपीआई व्यवस्था को किस रूप में समझना चाहिए और इसे चलाने तथा बनाए रखने की लागत आखिर कौन उठाए?

यूपीआई देश के डिजिटल सार्वजनिक ढांचा (डीपीआई) का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। साथ ही इसमें आधार के जरिए पहचान और अकाउंट एग्रीगेटर्स के जरिए डेटा का आदान-प्रदान भी शामिल है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) के अनुसार, डीपीआई ऐसी बुनियादी डिजिटल व्यवस्थाओं का समूह है, जो लोगों, कारोबार और सरकार के बीच सुरक्षित और आसान तरीके से संपर्क और लेनदेन संभव बनाती हैं। पहचान सत्यापित करने, बैंक खाता खोलने, तेज और भरोसेमंद डिजिटल भुगतान करने से लेकर सरकारी सेवाओं के बीच सुरक्षित तरीके से डेटा साझा करने तक, डीपीआई रोजमर्रा की जिंदगी को अधिक आसान और समावेशी बना सकता है।

भारत में यूपीआई ने अर्थव्यवस्था को डिजिटल बनाने में बड़ी भूमिका निभाई है। इसके कारण वित्तीय सेवाओं तक लोगों की पहुंच बढ़ने और अर्थव्यवस्था के अधिक औपचारिक होने जैसे फायदे सामने आए हैं। वित्तीय व्यवस्था की नजर से देखें तो नकदी आधारित व्यवस्था को चलाने में होने वाला खर्च कम हो सकता है। साथ ही, नए ग्राहकों को बैंकिंग और कर्ज व्यवस्था से जोड़ने की लागत भी कम होती है।

यूपीआई की व्यवस्था में केवल नियामक संस्था ही शामिल नहीं है। इसमें बैंक और दूसरी वित्तीय संस्थाएं, तकनीक और इंटरफेस उपलब्ध कराने वाली कंपनियां, दुकानदार और आम ग्राहक सभी शामिल हैं। यूपीआई से मिलने वाले फायदे भी केवल किसी एक वर्ग तक सीमित नहीं हैं। इसलिए यह सवाल स्वाभाविक है कि इस व्यवस्था को चलाने और बनाए रखने का खर्च किसे उठाना चाहिए?

परंपरागत तौर पर किसी सार्वजनिक वस्तु की लागत सरकार को करों के जरिए उठाना चाहिए। इन सार्वजनिक वस्तु की दो प्रमुख विशेषताएं होती हैं कि किसी एक व्यक्ति के इस्तेमाल से दूसरे व्यक्ति के लिए उसकी उपलब्धता कम नहीं होती और दूसरा उपलब्ध होने के बाद सामान्यतः लोगों को उसके इस्तेमाल से रोकना मुश्किल होता है। यूपीआई पूरी तरह सार्वजनिक वस्तु नहीं है। यह एक व्यक्ति के इस्तेमाल से दूसरे के लिए कम नहीं होता लेकिन तकनीकी रूप से इसके इस्तेमाल को सीमित किया जा सकता है। इसलिए ऐसी सेवाओं के लिए शुल्क लगाकर लागत निकालने की व्यवस्था की जा सकती है। प्रस्तावित एमडीआर इसी तरह का शुल्क है और इसमें अलग-अलग प्रकार के लेन-देन के लिए अलग शुल्क रखने की व्यवस्था भी है।

यूपीआई को एक ऐसे नेटवर्क के रूप में भी समझा जा सकता है, जिससे सकारात्मक बाहरी लाभ जुड़े होते हैं। यानी किसी एक व्यक्ति या संस्था को मिलने वाले लाभ के अलावा, पूरी अर्थव्यवस्था को भी इससे फायदा हो सकता है। ऐसी व्यवस्थाओं में शुरुआती दौर में मदद जरूरी हो सकती है ताकि नेटवर्क एक निश्चित स्तर तक पहुंच सके। उस स्तर के बाद व्यवस्था अपने खर्च खुद उठाने में सक्षम हो सकती है।

इस नजरिये से भी देखें तो यूपीआई के लिए एमडीआर पूरी तरह अनुचित विचार नहीं है, खासतौर पर तब जब यह व्यवस्था ठीक तरह से तैयार हो चुकी हो। सवाल यह है कि इसमें चुनौती क्या है? हम तीन सवालों के बारे में सोच सकते हैं। पहला, इस तंत्र में बड़ी तादाद में लाभार्थी हैं तो क्या लागत सभी लाभार्थियों में बांटी जानी चाहिए? यूपीआई से फायदा उठाने वालों की संख्या काफी बड़ी है। इनमें ग्राहक और व्यापारी तो हैं ही, बैंक और दूसरे कर्ज देने वाले संस्थान भी हैं। यूपीआई से बैंकों को संभावित ग्राहकों की जानकारी और डिजिटल लेन-देन के आधार पर उन्हें कर्ज देने की प्रक्रिया में मदद मिल सकती है। बैंक शाखाओं और एटीएम को चलाने की लागत में भी कमी आ सकती है।

इसके अलावा, पेमेंट एग्रीगेटर और वित्तीय प्रौद्योगिकी (फिनटेक) कंपनियों का कारोबारी मॉडल भी मौजूदा डिजिटल भुगतान व्यवस्था से जुड़ा हुआ है जो मुनाफे वाले कारोबारी उद्यम की अनुमति देता है। यह भी तर्क दिया जाता है कि यूपीआई के व्यापक इस्तेमाल से अर्थव्यवस्था के अधिक औपचारिक होने में मदद मिली है। इससे वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) से सरकार की आय बढ़ने में भी योगदान हो सकता है। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या यूपीआई की पूरी लागत केवल व्यापारियों पर डालने के बजाय, इससे फायदा उठाने वाले सभी पक्षों के बीच बांटी जानी चाहिए?

दूसरी अहम बात है कि यदि यूपीआई से पूरी अर्थव्यवस्था को मिलने वाला फायदा, यूपीआई को चलाने की लागत से कहीं ज्यादा है तब फिर केवल यूपीआई से राजस्व कमाने पर ध्यान देना शायद पर्याप्त नहीं होगा। इसके बजाय यह देखना होगा कि पूरी अर्थव्यवस्था के लिए यूपीआई से अधिकतम लाभ कैसे हासिल किया जा सकता है।

वित्तीय सेवा विभाग के एक अध्ययन रिपोर्ट, 'सोशियो इकनॉमिक इम्पैक्ट एनालिसिस ऑफ इंसेंटिव स्कीम फॉर प्रमोशन ऑफ रूपे डेबिट कार्ड ऐंड लो वैल्यू भीम यूपीआई ट्रांजैक्शन' में यूपीआई के कई सामाजिक और आर्थिक प्रभावों का जिक्र किया गया है।

इसी तरह नैसकॉम और ऑर्थर डी लिटिल के 'डिजिटल पब्लिक इन्फ्रास्ट्रक्चर ऑफ इंडिया-एक्सेलरेटिंग इंडियाज डिजिटल इन्क्लूजन' शीर्षक वाले शोध के अनुसार, आधार, यूपीआई और फास्टैग ने मिलकर 2022 में भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के लगभग 0.9 फीसदी के बराबर मूल्य सृजन में योगदान दिया। रिपोर्ट में 2030 तक इससे काफी अधिक आर्थिक लाभ होने का अनुमान लगाया गया है।

ऐसे में यह सवाल उठता है कि क्या यूपीआई जैसी व्यवस्था को सरकार की ओर से लंबे समय तक सहारा मिलना चाहिए? यह सवाल केवल यूपीआई तक सीमित नहीं है। सार्वजनिक परिवहन जैसी कई व्यवस्थाओं में भी ऐसा होता है। नेटवर्क का हर हिस्सा अपने दम पर मुनाफे में न हो, फिर भी वह पूरी अर्थव्यवस्था के लिए बड़ा लाभ पैदा कर सकता है।

प्रस्तावित एमडीआर में 2,000 रुपये से अधिक के लेनदेन पर 0.4 फीसदी शुल्क लगाने की बात है। इसकी अधिकतम सीमा 300 रुपये प्रति लेनदेन होगी। इसका मतलब है कि 75,000 रुपये से अधिक के लेनदेन पर अधिकतम शुल्क 300 रुपये हो जाएगा। वहीं 2,000 से 75,000 रुपये तक के लेनदेन पर आनुपातिक शुल्क होगा। लेकिन सोशल मीडिया पर एक सवाल यह भी उठ रहा है कि क्या इस तरह की व्यवस्था से लोगों के व्यवहार में भी बदलाव होगा यानी लोग बड़े लेनदेन के लिए यूपीआई की जगह दूसरे भुगतान माध्यमों का इस्तेमाल करने लगेंगे।

क्या यह एक विकल्प यह हो सकता है कि सभी लेनदेन पर एक छोटा और समान शुल्क लगाया जाए उदाहरण के तौर पर हर यूपीआई लेनदेन पर 20 पैसे का शुल्क रखा जाए? अगस्त 2026 में यूपीआई पर करीब 24.51 अरब लेनदेन हुए। सालाना आधार पर यह संख्या लगभग 284.12 अरब लेनदेन बैठती है।

अगर हर लेनदेन पर 20 पैसे का शुल्क लगाया जाए, तो इससे सालाना लगभग 5,882 करोड़ रुपये की राशि जुट सकती है। एक समान शुल्क का तर्क यह है कि इससे लोगों के भुगतान के तरीके को बदलने की संभावना कम होगी। इसलिए यूपीआई जैसी महत्वपूर्ण डिजिटल सार्वजनिक व्यवस्था के लिए स्थिरता और आगे के विकास को ध्यान में रखते हुए यह भी विचार किया जा सकता है कि शुल्क की ऐसी व्यवस्था हो, जिससे भुगतान के साधन को लेकर लोगों के व्यवहार में अनावश्यक बदलाव न आए।



Date: 02-10-26

प्रतिनिधित्व बनाम महिला सशक्तिकरण

अमरपाल सिंह वर्मा

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के आरक्षण को तीन दशक से अधिक समय बीत चुका है। इस दौरान लाखों महिलाएं स्थानीय शासन का हिस्सा बनी हैं। जिन परिवारों में महिलाओं का सार्वजनिक जीवन से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं था, वहां से निकलकर उनका चुनाव लड़ना और निर्वाचित होना सामाजिक बदलाव का संकेत है। मगर हकीकत कुछ और ही है। पंचायतों में अक्सर ऐसी स्थितियां दिखती हैं, जहां महिला सरपंच निर्वाचित तो होती है, मगर कामकाज पति संभालता है। कहीं ससुर, कहीं जेठ और कहीं पुत्र बैठकों में मौजूद होते हैं। कई बार महिला जनप्रतिनिधि की कुर्सी पर उसका पति या कोई दूसरा पुरुष बैठा दिखता है। तब सवाल केवल इतना नहीं रह जाता कि महिला प्रतिनिधि कहां है, बल्कि यह होता है कि जनता ने किसे चुना और उसके हिस्से का कार्य कौन कर रहा है?

उदाहरण के तौर पर देखें, तो राजस्थान में पंचायत चुनावों की तैयारियों के मद्देनजर सरपंच और वार्ड पंच के लिए महिलाओं के आरक्षित पदों की घोषणा भी कर दी गई है। आने वाले दिनों में गांवों में चुनावी हलचल बढ़ेगी और आरक्षित सीटों पर महिलाएं चुनाव मैदान में उतरेंगी। जीत के बाद उनके नाम के आगे सरपंच, वार्ड पंच या पंचायत समिति और जिला परिषद सदस्य जैसे पद जुड़ जाएंगे। लोकतांत्रिक व्यवस्था के आंकड़ों में महिलाओं की भागीदारी मजबूत दिखेगी। मगर आंकड़ों से आगे एक बुनियादी सवाल खड़ा है- क्या निर्वाचित होने के बाद महिलाएं वास्तव में पंचायत की सत्ता अपने हाथ में ले पाएंगी?

परिवार का सहयोग और प्रतिनिधि की जगह ले लेना एक बात नहीं है। नई महिला प्रतिनिधि को प्रशासनिक प्रक्रियाएं समझने, सरकारी योजनाओं की जानकारी लेने, दस्तावेज तैयार करने या अधिकारियों से संवाद करने में परिवार का कोई सदस्य मदद करे, तो इसमें अस्वाभाविक कुछ नहीं। कठिनाई वहां शुरू होती है, जहां मदद धीरे-धीरे अधिकार में बदल जाती है और सहयोगकर्ता निर्वाचित प्रतिनिधि की भूमिका ही अपने हाथ में ले लेता है। पति अधिकारियों से मिलने लगे, पंचायत की बैठकों में महिला की जगह बैठने लगे, फैसले खुद लेने लगे और पंचायत से जुड़े लोग भी उसी को वास्तविक प्रतिनिधि मानने लगे, तो यह परिवार की सहायता नहीं, निर्वाचित अधिकार का अतिक्रमण है। परिवार के भीतर सत्ता संबंध हमेशा बराबरी के नहीं होते। अनेक मामलों में महिलाएं आर्थिक और सामाजिक रूप से पति या परिवार के दूसरे सदस्यों पर निर्भर होती हैं। गांव में पुरुष रिश्तेदार का प्रभाव भी अधिक हो सकता है। ऐसे में किसी महिला के लिए पति, ससुर या पुत्र को यह कहना कि पंचायत का काम वह स्वयं देखेगा, उतना सरल नहीं होता जितना बाहर से दिखता है। इसलिए महिला के नाम पर पुरुष द्वारा

पंचायत चलाने की समस्या को केवल महिला की इच्छा या उसकी प्रशासनिक क्षमता का प्रश्न मानना अधूरा होगा।

यदि निर्वाचित महिला की जगह उसका पति या कोई पुरुष रिश्तेदार पंचायत की बैठक में मौजूद रहता है, तो क्या केवल महिला को दंडित करना न्यायसंगत होगा? मध्य प्रदेश में कुछ वर्ष पहले महिला सरपंचों और पंचों की जगह उनके पति या दूसरे परिजनों के पंचायत बैठकों में शामिल होने पर रोक लगाने के लिए प्रशासनिक आदेश जारी किया गया था। ऐसे मामलों में महिला प्रतिनिधि के विरुद्ध कार्रवाई का प्रावधान चर्चा में आया। मगर प्रश्न यह है कि यदि निर्वाचित महिला की जगह रिश्तेदार पुरुष पद का इस्तेमाल कर रहा है, तो जवाबदेही का केंद्र वही पुरुष क्यों न बने? मान लिया जाए कि किसी महिला को स्वतंत्र रूप से पंचायत का कार्य करने नहीं दिया जा रहा। परिवार का कोई पुरुष सदस्य उसके स्थान पर फैसले कर रहा है और महिला आर्थिक या सामाजिक दबाव के कारण उसका विरोध नहीं कर पा रही। ऐसी स्थिति में उसे पद से हटाने की चेतावनी उसकी स्थिति को मजबूत करेगी या कमजोर? यदि समस्या ही यह है कि उसके निर्वाचित अधिकार पर किसी दूसरे का कब्जा है, तो समाधान उस महिला को सार्वजनिक जीवन से बाहर करना नहीं, बल्कि उसके अधिकार को सुरक्षित करना होना चाहिए।

महिला आरक्षण का उद्देश्य पंचायत की कुर्सी पर केवल महिला का नाम दर्ज कराना नहीं था। इसका मकसद निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं की वास्तविक भागीदारी सुनिश्चित करना था। इसलिए निर्वाचित महिला की जगह कोई पुरुष पंचायत चला रहा हो तो प्रशासन की जिम्मेदारी केवल यह पता लगाने तक सीमित नहीं हो सकती कि नियम टूटा या नहीं। उसे यह भी सुनिश्चित करना होगा कि निर्वाचित प्रतिनिधि अपने संवैधानिक और वैधानिक अधिकारों का इस्तेमाल कर सके। यहां कानून के साथ सामाजिक मानसिकता का सवाल भी जुड़ा है। कई जगह महिला के निर्वाचित होने के बाद भी परिवार और गांव का व्यवहार ऐसा होता है, मानो वास्तविक प्रतिनिधि उसका पति ही हो। अधिकारी अनौपचारिक रूप से उसी से बात करने लगते हैं। पंचायत से जुड़े ठेकेदार और दूसरे प्रभावशाली लोग भी उसी पुरुष को निर्णयकर्ता मान लेते हैं। गांव के लोग अपनी समस्याएं लेकर महिला के बजाय उसके पति के पास पहुंचते हैं। इस तरह धीरे-धीरे एक ऐसी समांतर व्यवस्था बन जाती है, जिसमें पद महिला का होता है और अधिकार पुरुष का।

फिर भी महिला आरक्षण की उपलब्धियों को केवल ऐसी विसंगतियों के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता। अनेक महिला प्रतिनिधियों ने पंचायत व्यवस्था को समझा, प्रशासनिक प्रक्रियाएं सीखीं और स्वतंत्र निर्णय लिए हैं। उन्होंने पेयजल, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, सड़कों और दूसरी बुनियादी सुविधाओं को स्थानीय प्राथमिकताओं में जगह दी है। इससे स्पष्ट होता है कि समस्या महिलाओं की क्षमता की नहीं, बल्कि उन्हें उपलब्ध निर्णय की स्वतंत्रता की है। इसलिए महिला प्रतिनिधियों के काम का मूल्यांकन उनके फैसलों और पंचायत के कामकाज से होना चाहिए, न कि इस आधार पर कि वे महिला हैं। यदि कोई निर्वाचित प्रतिनिधि ग्रामसभा में स्वयं अपनी बात

रखती है, अधिकारियों से सवाल करती है, योजनाओं को समझती है और गांव की प्राथमिकताएं तय करती है, तो यही लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व की वास्तविक कसौटी है।

राजस्थान में भावी पंचायत चुनावों के बाद हजारों महिलाएं स्थानीय शासन की जिम्मेदारी संभालेंगी। तब महिला प्रतिनिधित्व का आंकड़ा निश्चित रूप से महत्वपूर्ण होगा, लेकिन उससे भी महत्वपूर्ण यह देखना होगा कि कितनी महिलाएं ग्रामसभा में स्वयं बोलती हैं, कितनी अधिकारियों से सीधे संवाद करती हैं, कितनी अपने गांव की प्राथमिकताएं तय करती हैं और कितनी अपने नाम पर चल रही किसी दूसरी सत्ता के साए में खड़ी रह जाती हैं। आरक्षण ने महिलाओं के लिए पंचायत के दरवाजे खोल दिए हैं। अब अगली चुनौती यह सुनिश्चित करने की है कि उस दरवाजे के भीतर उनकी आवाज भी पहुंचे और निर्णय का अधिकार भी उनके हाथ में रहे। लोकतंत्र में प्रतिनिधित्व केवल कुर्सी तक पहुंचने का नाम नहीं है। वह अपने विवेक से निर्णय लेने की स्वतंत्रता का भी नाम है। जब महिला अपने नाम से मिली कुर्सी पर स्वयं बैठेगी, अपनी बात रखेगी और अपने निर्णय खुद करेगी, तभी संख्या में दिखाई देने वाला प्रतिनिधित्व वास्तविक सशक्तीकरण में बदलेगा। यही महिला आरक्षण की अगली और अधिक कठिन कसौटी है।

Date: 03-10-26

सवाल का घेरा

संपादकीय

देश में मतदाता सूची को दुरुस्त और अद्यतन करने के उद्देश्य से शुरू किया गया विशेष गहन पुनरीक्षण यानी एसआइआर अब कई उलझनों और सवालों के घेरे में है। जिस प्रक्रिया का मकसद पात्र मतदाताओं के नाम सूची में शामिल करना और अपात्र नामों को हटाना है, वही आग नागरिकों के लिए परेशानी और चिंता का कारण बन गई है। मताधिकार लोकतंत्र की पहचान है और अगर बड़ी संख्या में नागरिकों का यही अधिकार छिन जाए, तो चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली पर सवाल उठना स्वाभाविक है। हाल ही में आयोग के भीतर मतभेदों को लेकर जिस तरह की खबरें सामने आई हैं, उससे उसकी निष्पक्षता, पारदर्शिता और विश्वसनीयता की साख भी दांव पर है। सड़क से लेकर अदालत तक में चुनाव आयोग से सवाल पूछे जा रहे हैं। इसी क्रम में बंबई उच्च न्यायालय ने बीते गुरुवार को कहा कि जब आयोग मतदाताओं के आचरण पर सवाल उठाता है, तो नागरिकों को भी यह पूछने का अधिकार है कि चौबीस साल बाद एसआइआर क्यों कराया जा रहा है!

लोकतांत्रिक व्यवस्था में मतदान का अर्थ केवल सत्ता का चवन नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण में आम नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित करना भी है। ऐसे में किसी पात्र नागरिक को तकनीकी कारणों का हवाला देकर मतदाता सूची से बाहर करना वैध रूप में उसके अस्तित्व को नकारने जैसा है। एसआइआर की प्रक्रिया में कई तरह की

जटिलताएं हैं, जिनमें मतदाताओं के लिए पुराने रिकार्ड के आधार पर अपनी पहचान और पात्रता साबित करने की चुनौती प्रमुख है। देश भर में बड़ी संख्या में ऐसे लोग हो सकते हैं, जिनके पास पुराने दस्तावेज उपलब्ध न हो ग्रामीण क्षेत्रों, गरीब परिवारों, बुजुर्गों और प्रवासी मजदूरों के लिए इस तरह के जरूरी कागजात जुटाना आसान नहीं होता है। कई बार लोगों के नाम, पते और जन्मतिथि में मामूली अंतर भी उन्हें मतदाता सूची से हटाने का कारण बन जाता है। बंबई उच्च न्यायालय ने भी इस चिंता को रेखांकित करते हुए कहा है कि निर्वाचन आयोग का प्रवास ऐसी मतदाता सूची तैयार करना होना चाहिए, जिसमें अधिकतम पात्र मतदाता शामिल हों इस उद्देश्य के लिए आयोग को हर तरह के उपाय करने चाहिए। मगर स्थिति इसके विपरीत नजर आती है, क्योंकि देश भर में अब तक तेरह करोड़ से अधिक लोगों के नाम मतदाता सूची से बाहर कर दिए गए हैं।

खबरों के मुताबिक, एसआइआर पर व्यापक चिंता और सवालियों के बीच चुनाव आयोग अब सूची से बाहर हो गए लोगों की नए सिरे से तलाश शुरू करेगा। पुनरीक्षण में जो नाम स्थानांतरण आवास पर नहीं मिलने, फार्म जमा न होने या अन्य तकनीकी कारणों से छूट गए हैं, उनका पता लगाकर उन्हें अपनी पात्रता साबित करने का फिर से मौका दिया जाएगा। मगर वह सकल अब भी अपनी जगह कायम है कि क्या मतदाता सूची से बाहर किए गए सभी पात्र नागरिकों की चहाली हो पाएगी ? पश्चिम बंगाल में मताधिकार से वंचित हुए लाखों लोगों की आपत्तियों पर सुनवाई के लिए न्यायालय के निर्देश पर विशेष प्राधिकरण गठित किए गए, जिनमें अब तक हुए निपटारों में नब्बे फीसद से अधिक मतदाताओं की सूची में बहाली हुई है। इससे सबक लेकर कायदे से बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में भी ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए। क्योंकि यहां भी लाखों की संख्या में लोगों ने अपना मताधिकार खो दिया है। मगर चुनाव आयोग के स्तर पर फिलहाल ऐसी किसी पहल की संभावना नजर नहीं आ रही है।

चुनाव सुधार जारी रहे

संपादकीय



चुनाव आयोग और मुख्य चुनाव आयुक्त संबंधी विवाद थमने का नाम नहीं ले रहे हैं, तो दूसरी ओर, चुनाव सुधार और सुनवाई की प्रक्रिया भी जारी है। गांधी जयंती, 2 अक्टूबर को आयोजित विपक्षी दलों के प्रदर्शन को देखते हुए पुलिस ने पूरी सतर्कता बरती। वैसे तो देश के अनेक शहरों में विरोध-प्रदर्शन हुए हैं, किंतु मुंबई के शिवाजी पार्क और दिल्ली में जंतर मंतर पर सबकी निगाहें रहीं। प्रदर्शन के कहीं पर भी उग्र होने से रोकने

के लिए पुलिस दृढ़ दिखी है। जंतर मंतर पर काँकरोच जनता पार्टी के पिछले प्रदर्शन के दौरान सुरक्षा बलों व प्रदर्शनकारियों में झड़प हो गई थी, जिसमें बड़ी संख्या में लोग घायल हुए थे। शायद प्रशासन ने अपने अनुभवों से सीखा है। पुलिस को अपनी और प्रदर्शनकारियों की सुरक्षा की चिंता है। पिछली बार टकराव की जिम्मेदारी पुलिस पर ही डाली गई थी। अतः इस बार बड़ी संख्या में प्रदर्शनकारियों को हिरासत में लिया गया। हालांकि, यह सवाल पूछने वाले भी कम नहीं हैं कि क्या लोकतंत्र में अब विरोध-प्रदर्शन का अधिकार भी नहीं है?

बहरहाल, विरोध-प्रदर्शन की राजनीति जारी रहेगी, लेकिन इस बीच अच्छी बात है कि चुनाव सुधार की प्रक्रिया भी तेजी से चलती दिख रही है। चुनाव आयोग ने छूट गए और पहली बार मतदान करने योग्य युवाओं को मतदाता सूची में शामिल करने के लिए एक विशेष अभियान चलाने का निर्देश दिया है। यह विशेष अभियान उन राज्यों में चलेगा, जहां मतदाता सूची का विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) कार्य पूरा हो चुका है। दबाव में ही सही, यह आयोग का एक सराहनीय कदम है। यह शिकायत बार-बार सामने आ रही है कि बड़ी संख्या में मतदाताओं के नाम हटा दिए गए हैं। इस शिकायत को दूर करने के लिए आयोग को मुस्तैदी से काम करना होगा। इसके साथ ही, आयोग ने स्पष्ट किया है कि मतदाता नामांकन एक सतत प्रक्रिया है और कोई भी व्यक्ति इसमें आवेदन कर सकता है। हालांकि, अगर नामांकन की प्रक्रिया सतत होती, तो मतदाता पंजीकरण के लिए अभियान की जरूरत नहीं पड़ती। अगर नामांकन बारहों महीने चलाया जाए, तो लोगों को यह सुविधा देनी चाहिए कि वे अपने परिजनों के नाम जुड़वा या हटवा सकें। नाम जोड़ने पर विवाद नहीं होता, पर नाम कटने पर स्थिति बिगड़ती है। अतः नाम काटने की पारदर्शी प्रक्रिया होनी चाहिए।

आज मतदाता सूची पुनरीक्षण बहुत गंभीर विषय हो गया है। देश की राजनीति इसके इर्द-गिर्द घूमने लगी है। ऐसे में, चुनाव आयोग को निचले स्तर पर हो रही गलतियों को बहुत सावधानी से सुधारना चाहिए। बीएलओ और ईआरओ को सही ढंग से प्रशिक्षित करने की जरूरत है। अगर ये दोनों मिलकर ठीक से काम करते, तो किसी वैध मतदाता का नाम सूची से नहीं कटता और न ही फर्जी नाम जुड़ पाता। आज जो भी पार्टियां वोट कटने को मुद्दा बना रही हैं, उन्हें अपनी पार्टी के बीएलए की गुणवत्ता भी परखनी चाहिए। यह वाकई संतोष की बात है कि बीएलओ को घर-घर जाकर सर्वेक्षण करने के लिए कहा गया है। गौर करने की बात है, गहन पुनरीक्षण मुहिम में 6 से 11 प्रतिशत नाम कट जा रहे हैं। इसलिए, पूरी संवेदना से जांचना होगा कि कोई भी जायज नाम सूची से वंचित न रह जाए। पुनरीक्षण बहुत कठिन है। झूठे दावे करने वाले भी कम नहीं हैं और इनके खिलाफ कार्रवाई होनी चाहिए। देश में सही मतदाता सूची चुनाव आयोग की जिम्मेदारी है। ध्यान रहे, शिकायतों के आधार पर ही आंदोलन खड़ा हुआ है और अगर उनका यथाेचित निवारण हो जाए, तो इसकी राजनीति भी बीती बात हो जाएगी।